OUKA
The University of Osaka
Institutional Knowledge Archive

Title	The Conflict Between Woman and Family in Mitro Marjani and Ai Ladki
Author(s)	Singh, Ved Prakash
Citation	外国語教育のフロンティア. 2026, 9, p. 31-37
Version Type	VoR
URL	https://doi.org/10.18910/104362
rights	
Note	

The University of Osaka Institutional Knowledge Archive : OUKA

https://ir.library.osaka-u.ac.jp/

The University of Osaka

The Conflict Between Woman and Family in *Mitro Marjani* and *Ai Ladki*

‘मित्रो मरजानी’ और ‘ऐ लड़की’ में स्त्री और परिवार का द्वन्द्व

SINGH, VED PRAKASH

Abstract

In this article, I have sought to explore Krishna Sobti’s literary courage and thematic innovation through her two seminal novels—*Mitro Marjani* and *Ai Ladki*. These works, though distinct in tone and structure, are united by Sobti’s unwavering commitment to centring the female voice in spaces where it has long been marginalized: sexuality, family, memory, and death.

Mitro Marjani is a bold, defiant narrative that introduces us to Mitro—a woman who refuses to be silenced by the moral codes of a patriarchal society. She speaks openly of her sexual desires, not as a provocation, but as a declaration of her humanity. In crafting Mitro, Sobti does not merely challenge societal taboos; she reclaims the legitimacy of female pleasure as a natural, unashamed part of existence. Mitro’s voice is raw, witty, and unfiltered—she is not a victim, but a provocateur who exposes the hypocrisies of domestic life. Through her, Sobti critiques the rigid structures of family, not to dismantle them entirely, but to demand a more honest and equitable foundation.

In contrast, *Ai Ladki* is a quieter, more introspective work—yet no less radical. Here, Sobti turns her gaze inward, weaving a tender dialogue between a daughter and her dying mother. The novel is steeped in memory, loss, and the emotional labour of caregiving. But beneath its lyrical surface lies a powerful meditation on womanhood across generations. The mother, once vibrant and commanding, now lies bedridden, while the daughter navigates the intimate terrain of love, resentment, and reconciliation. Sobti’s language in *Ai Ladki* is poetic, elliptical, and deeply personal. It is a novel that does not shout—it whispers, and in those whispers, it reveals the emotional architecture of female experience.

Together, these two novels form a compelling dialectic. *Mitro Marjani* is the voice of resistance; *Ai Ladki* is the voice of remembrance. One confronts the world head-on, the other reflects upon it with aching tenderness. Yet both are united by Sobti’s literary ethos: to write women not as symbols or stereotypes, but as full, complex beings—desiring, grieving, questioning, and enduring.

In writing this article, my aim has been to highlight how Krishna Sobti’s work transcends mere representation. She does not write about women—she writes *as* women, from within their lived realities. Whether through Mitro’s irreverent defiance or the daughter’s quiet devotion in *Ai Ladki*, Sobti insists that the female voice belongs at the centre of literature, not its margins.

KEY WORDS: Female sexuality, Patriarchy, Family structure, Gender roles, Resistance and reconciliation

कृष्णा सोबती की कहानियाँ के अंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। कहानी के उन अंतिम वाक्यों में कहानी का केन्द्रीय भाव अथवा बीज छिपा होता है। रचना का कारण या उसे प्रयोजन कहें वह भी उसी स्थल के पास होता है जहाँ कहानी झटके से क्लाइमैक्स पर पहुँचकर समाप्ति की ओर जाती है।

कृष्णा सोबती मित्रो जैसी अभूतपूर्व पात्र हिंदी साहित्य को देती हैं। वे किसी वाद के कारण ऐसा नहीं करती हैं। वे स्त्री को उसकी संपूर्णता में मान देती हैं। स्त्री उसके मन और तन की गरिमा के साथ उनकी रचनाओं में मौजूद है। वहीं जब वे 'ऐ लड़की' में माँ द्वारा अपनी बेटी के अविवाहित रह जाने की प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से आलोचना और बच्चेवाली होने की सलाह देती हैं तो भी वहाँ स्त्री को उसकी संपूर्णता में ही स्वीकार करती हैं।

हमारे हजारों साल के समाज ने न जाने कितनी व्यवस्थाएँ बनाई हैं। स्त्री के लिए जितनी भी व्यवस्थाएँ जिन भी समाजों में बनी हैं उनमें मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था निश्चित रूप से स्त्री के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था मानी जा सकती है। फिर भी कृष्णा सोबती पुरुष समाज में चल रही व्यवस्था में ही स्त्री को बराबरी और सम्मान के साथ जीवन को बेहतर बताने की पुरजोर कोशिश करती हैं। संभवतः वे जिस समाज में रहीं उसी में स्त्री होने को पूरी ठसक के साथ जीने की सफल कोशिश करते हुए ऐसा ही स्पेस स्त्रियों के लिए रचती रहीं। दुनिया की अधिकांश स्त्री आबादी पुरुष सत्तात्मक समाज में ही रहती है। दुनिया में बहुत कम संख्या में स्त्रियाँ मातृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का सुख ले पा रही हैं। संभवतः अपने अनुभवों के आधार पर और पूरी दुनिया में स्त्री को उसके समाज में ही गरिमापूर्ण जीवन जीने का ढंग अपनी रचनाओं में दिखाती हैं।

वे अपने उपन्यासों और कहानियों में मनुष्य को उसकी संपूर्णता में ग्रहण करती हैं। इसलिए विमर्श के विभाजनों से उनके सभी पात्रों की समीक्षा कर पाना सहज संभव नहीं होगा। जीवन के लिए जिन उदात्त मानव मूल्यों की आवश्यकता हमें है उनकी वे अपनी सभी रचनाओं में वकालत करती हैं।

मित्रो के व्यवहार और उसकी अकुंठ इच्छाओं पर अक्सर बात होती है। उसकी बेहद मानवीय माँग को कहने और सुनने का साहस भी इससे पहले साहित्य में नहीं था। अगर यह था भी तो संकेतों में था। इतने अकुंठ और स्पष्ट रूप में नहीं आ पाया था। मित्रो द्वारा अपने पति, जेठ, जेठानी और सास से कहे गए वाक्यों को खूब उद्धृत किया जाता रहा है। यौनेच्छा व्यक्त करने वाले उन वाक्यों[1] को ही इस लंबी कहानी का मूल तत्त्व बताया गया है। मेरी नजर में यह मित्रो की पृष्ठभूमि मात्र है। असल जीवन अंतिम अनुच्छेद में समाया हुआ है। वहीं से मित्रो या सुमित्रावंती का दूसरा जीवन शुरू होता है। यह केवल संयोग ही है कृष्णा सोबती की गिरधर राठी द्वारा रचित जीवनी का शीर्षक भी 'दूसरा जीवन' है।

मित्रो के दूसरे जीवन से ठीक पहले की घटना क्या है? वहाँ क्या घटित होता है जिसके कारण मित्रो अपने पहले जीवन से बिलकुल भिन्न हो गई? पति को शराब पिलाकर धुत कर देने के बाद उसे सोता छोड़ अपने और अपनी माँ के पूर्व प्रेमी के पास जाती मित्रो माँ की आवाज सुन वापस पलट आती है। फिर मित्रो की माँ बालो का रोना शुरू होता है। मित्रो रोने का कारण पूछती है। बालो के जीवन में अब कोई यार नहीं बचा है। शरीर का यौवन रस बीत चुका है। अब अपने इस रिक्त जीवन को धिक्कार रही है।

"माँ के कंधे थाम उसकी काली-भौंरी अँखियों से बहते परनाले देख रुक-रुक कहा—तेरे दिलगारों की गिनती तो सौ-सैंकड़ों में थी, बीबो! लड़की की बात सुन बालो हाहाकार कर उठी। मित्रो का हाथ पकड़ रो-रो कहती चली—न-न, री, अब इस ठठरी ठंडी भट्टी का कोई वाली-वारस नहीं! कोई मरे मनुक्ख का नाम भी नहीं...दुखियारी माँ को गलबाँही दे मित्रो ने ढाँढ़स बँधाया—मेरी सौंह, बीबो, जो तुम इतना दुख मनाओ! बालो ने वास्ते ले-ले कहा—**तेरी अकेली माँ को अब यह घर काटने दौड़ता है, री।** एकाएक जाने क्या हुआ कि भय के मारे मित्रो का कलेजा दहल गया। (आप इन दोनों वाक्यों को इस रचना का बीज वाक्य मान सकते हैं।) अँधेरे में मुँह बाए सूने किवाड़ों को देखा तो आँखों में कोई बिजुरिया कौंध गई। मसान-सा सूना भाँय- भाँय करता घर भूतों के डेरे-सा दिखा और कलपती माँ को भूखी-प्यासी डाकिन-सी। बालो लड़की को अपनी ओर खींच बोली—बेटी! मुझे अब अकेले छोड़कर न जाना! मैं सरदारी लाल को मना लूँगी। अँधेरे में दमदमाते नीले पपोटोंवाले माँ के काले चेहरे पर दो चील की-सी आँखें देखीं तो चीख मार मित्रो पर जा छिटकी। --- क्यों री, क्यों? लंबा गहरा फुँकार भर माँ को अपनी ओर बढ़ते देख पहले मित्रो की घिग्घी बँध गई, फिर जाने किस जोर-जाम से संभली और तड़पकर चीखी--- तू सिद्ध भैरों की चेली, अब अपनी खाली कड़ाही में मेरी और मेरे खसम की मछली तलेगी? सो न होगा, बीबो, कहे देती हूँ! – फिर तीर की-सी छलाँग मार ओसारे से देहरी कुलाची और माँ के ठेलते-ठेलते सरदारी लाल वाली बैठक की कुंडी चढ़ा ली।"[2]

(अगले दिन की घटना और मित्रो का दूसरा जीवन यहाँ से शुरू होता है।) "दिन चढ़े सरदारी ने जो देह को तोर-मरोर आँखें खोलीं तो पास लेटी मित्रो ने अपने सैयाँ के मुँह पर चुम्मे जड़ दिए।" ... "सैयाँ के हाथ दाबे, पाँव दाबे, सिर-हथेली ओंठों से लगा झूठ-मूठ की थू कर बोली—कहीं मेरे साहिब जी को नजर न लग जाए इस मित्रो मरजानी की!"[3]

मित्रो इस रात के बाद अन्या से अनन्या बनती है। मित्रो अपनी माँ के अकेलेपन में अपने संभावित भविष्य की काली छाया देखकर डर जाती है। उसे परिवार के होने और पति के होने का सच्चा अर्थ यहाँ समझ आता है। यह मेरी नहीं कृष्णा सोबती जी की स्थापना है। इसकी अपने तरीके से तसदीक वे 'ऐ लड़की' कहानी में भी अनेक स्थलों पर करती हैं।[4]

स्त्री परिवार और विवाह व्यवस्था में जिस प्रकार शोषित होती रही है उसके कारण स्त्रीवाद अगर इन दोनों व्यवस्थाओं को नकारने की बात करता है तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन कृष्णा सोबती ऐसे नारीवाद को ही नकारती हैं और खुद को नारीवादी कभी नहीं कहलवाना पसंद करती हैं। वे स्त्री को, उसकी अस्मिता को और उसकी यौनिकता को उस समय से चिह्नित करने लगती हैं जब स्त्री विमर्श को हिंदी में आने में एक-दो दशक का इंतजार करना था।

यही काम महादेवी वर्मा ने 1936 के आसपास 'शृंखला की कड़ियाँ' किताब के निबंधों के जरिए किया। इसमें वे स्त्री की स्वतंत्र हैसियत के लिए अनिवार्य आर्थिक और निर्णय लेने की क्षमता पर ही लिख पाईं। स्त्री को इससे अधिक भी कुछ कहना है उसके लिए हिंदी साहित्य को और तीस बरस इंतजार करना था।

अब पुरुषों और स्त्रियों द्वारा यौनिकता पर बात करना टैबु नहीं है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'कल फिर आना', जयश्री राय की 'वर्जित सुख' और 'पिंडदान' आदि कहानियों में स्त्री और पुरुषों की भी यौन इच्छा का साहित्य में प्रवेश मिला है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानी 'कल फिर आना'[5] में एक स्त्री के मन से सबसे गोपनीय भाव उसकी यौन-इच्छा को लिखा गया है। लेकिन उसका अंतिम

वाक्य कृष्णा सोबती के पात्रों के हिसाब से देखें तो स्त्री और परिवार की धारणा के लिए उपयुक्त नहीं है। पुरुष अपने जीवन की जरूरतों और मन की सभी इच्छाओं को हमेशा से व्यक्त करता रहा है। चाहें तुलसीदास का यह कथन हो कि हे राम तुम मुझे ऐसे प्रिय बनो जैसे एक कामी पुरुष के लिए नारी प्यारी होती है। कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।। यहाँ वे पुरुष यौनिकता अथवा पुरुष की यौन इच्छा को भी प्रकारांतर से व्यक्त कर रहे थे। यह बात पाँच सौ साल पुरानी है। ऐसे ही खजुराहो के शिल्पकार से लेकर उनको बनवाने वाले राजा-सामंत सब पुरुष ही थे जिन्होंने यौन-मुद्राओं में मूर्तियाँ निर्मित कीं अथवा करवाईं।

अभी अम्बर पाण्डेय का उपन्यास 'मतलब हिन्दू' आया है। उसमें गोवर्द्धनचंद्र गंगाशंकर दवे अपनी सभी यौन इच्छाओं को न केवल व्यक्त करता है बल्कि पूर्ति भी बिना संकोच के करता है। स्त्रियों के लिए ऐसा कह पाना और लिख पाना किसी भी समाज भी अभी तक संभव नहीं हो पाया है।

कृष्णा सोबती ने मित्रो के रूप में ऐसा स्त्री की रचना की जो दुनियाभर की सभी स्त्रियों के मन की सबसे जरूरी इच्छा को बिना किसी संकोच के व्यक्त करने का साहस रखती है। भूख और प्यास की भाँति यौन सुख की कामना भी मनुष्य की मूल जरूरतों में से एक है। पुरुष की तरह स्त्री को भी यौन सुख की उतनी ही कामना होती है इसके बारे में साहित्य बहुत कम है। अगर है भी तो उसमें पुरुषों ने अपनी इच्छाओं को जोड़ दिया है। स्त्री द्वारा लिखित स्त्री की यौनिकता पर शोध पूर्ण किताबें और रचनात्मक साहित्य की अब भी बहुत कमी है।

कृष्णा सोबती परिवार व्यवस्था को ठोक-पीटकर उसे समतल करने के लिए मित्रो जैसी चोट भारतीय समाज में पहुँचाती हैं। इस रचना के प्रकाशन के बाद अनेक आलोचकों ने इस चोट से चोटिल होने के कारण भी पात्र मित्रो मरजानी और लेखक कृष्णा सोबती की आलोचना की है।

कृष्णा सोबती की पहचान मुझे स्त्री यौनिकता को प्रकट करने में नहीं उसके परिवार संस्था में समाहार में दिखती है। जिसमें स्त्री को किसी प्रकार से कमतर न समझा जाए। 'कालबोध की छाया में आदिम कुंठाहीनता' शीर्षक अपने लेख में डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है- "यह कहानी पारिवारिकता को उधेड़कर उसकी पुनर्प्रतिष्ठा करती है।"[6] मित्रो मरजानी में मित्रो के ससुर गुरुदास सोचते हैं- " घर-गृहस्थी के जंजाल में भी मनुक्ख घाटे में नहीं रहता। इस माया में लाख दुख-सोग पर फिर इसी की खट्टी कमाई बुढ़ापे में काम आती है।"[7]

कृष्णा सोबती की किसी एक रचना को जब दूसरी रचना के सामने रखते हैं तो पहली रचना से बनी धारणा वे स्वयं तोड़ती हैं। अगर 'मित्रो मरजानी' में मित्रो जैसी विलक्षण पात्र वे रचती हैं तो 'ऐ लड़की' में बीमार माँ के रूप में स्त्री की एक दूसरी ही छवि गढ़ती हैं। स्त्रीवाद के पक्षधर आलोचकों को मित्रो के विचार और अपनी यौनिकता के प्रति सजगता आकर्षित करती है वहीं 'ऐ लड़की' में माँ अपनी बेटी को बार-बार माँ होने को स्त्री की पूर्णता का पर्याय बताना परंपरावादी विचार लगता है। इसमें वे स्त्री की सार्थकता उसके मातृत्व में बताती हैं-"लड़की, बच्चे खयालों से नहीं बनते। बनाने में मेहनत लगती है। खून-पसीना एक हो जाता है माँ का। लंबी चुप्पी। बच्चे को जन्म देकर ही इंसान मौत को ललकारता है।"[8] और इससे भी आगे बढ़कर वे पुरुष वर्चस्व को उचित ठहराने का भी प्रयास करती हैं। इसे पढ़कर किसी भी स्त्री को ही नहीं समानता के विचार को मानने वाले पुरुष को भी असंगत लगेंगे। "लड़की, मर्द दबदबा रहना ही चाहिए। उसका स्थान नीचे नहीं, ऊपर है।"[9] मर्द के दबदबे को एक स्थान पर स्थापित करते हुए कृष्णा सोबती

यह भी कहना नहीं भूलती कि परिवार की बुनियाद में जो विषमता है उसमें स्त्री को नुकसान में रहना पड़ता है।

स्त्री को घर छोड़ने की वकालत कृष्णा जी कभी नहीं करती हैं। घर की व्यवस्था में बराबरी नहीं मिल पाती है इसे भी वे स्वीकार करती हैं। सामंती शोषण और पूंजीवादी शोषण के बीच स्त्री को एक ऐसे घर की तलाश दिखती है जहाँ गैर-बराबरी न हो। स्त्री के इस नुकसान को शून्य पर लाने के लिए उनके पात्रों का जीवन और उनके कथन उल्लेखनीय हैं। शादी से पहले पिता और भाई के अनुसार जीवन जीने में स्त्री को गैर-बराबरी का अहसास लगातार होता है। बाद में पति और ससुर ऐसी पाबंदियाँ लगाते हैं। लेकिन 'ऐ लड़की' की अम्मी को अपनी मायके में तो कुछ पाबंदियाँ और विषमताएँ झेलनी पड़ती हैं किन्तु ससुराल का वातावरण रोक-टोक से प्रायः रहित था। वे लिखती हैं- "पहले शादी में लड़की का सिर ऐसे गूँथा जाता था ज्यों दुनिया-भर की पाबंदियाँ दुल्हन के बालों पर ही लगा देनी हों। मैं ससुराल पहुँची तो मौका लगते ही तुम्हारे पिताजी बोले—इस तरह के बाल गूँथने से तुम्हें परेशानी नहीं होती? सिर तो बुरी तरह जकड़ गया होगा! मैंने कहा—मुझे तो चुटले की एक ही गूँथ भाती है। पर यह तो रीति-रस्म के ही कारण है। तुम्हारे पिता समझाकर बोले—देखो, इस घर में ऐसा कुछ नहीं, जो बदला न जा सके। जिसे करने में आराम मिले, सहूलियत हो और जो मन को अच्छा लगे, वह निश्चिंत हो कर सकती हो! अम्मू, सुनकर कैसा लगा आपको? अच्छा। जी में खुश हुई कि ढंग से निभ जाएगी। तुम्हारे पिता स्वभाव से नर्म और संयमवाले थे। मुझ पर बेकार की रोक-टोक नहीं थी। हाँ, परिवार की जो अपनी मान-मर्यादा थी, उसे काटने-छाँटने की कोई छूट नहीं थी। इस मामले को लेकर बड़ी सख्ती थी। अम्मू, यह तो हठधर्मी हुई न! नहीं, अनुशासन! तुम्हारे दादा साहिब का ठहराव और अनुशासन दोनों अद्भुत थे। पिता-पुत्र का पलड़ा लगभग एक-सा था। न भारी और न हल्का। बराबरी की बात मैंने इनके घर में आकर सीखी, समझी। इनके घर में लड़की-लड़के में कोई भेदभाव नहीं था।"[10] ऐसे घर जिसमें भेदभाव न हो वह बेहतर है तो क्यों न कृष्णा सोबती की स्त्री-पात्र घर लौटें? घर में रहकर उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए वे स्त्री को आर्थिक रूप से मजबूत बनने की बात कहती हैं। बिना आर्थिक बराबरी के सामाजिक अथवा पारिवारिक बराबरी पाना संभव नहीं है।

'ऐ लड़की' की अम्मी अपने यहाँ काम करने वाली नर्स सूसन को इसी आर्थिक बराबरी का पाठ पढ़ाती हैं- "अपने लिए कोई लड़का नजर में है? ढूँढने का काम तुम्हें खुद ही करना होगा। नहीं अम्मीजी, अभी नहीं। मैं नर्सिंग में दाखिला लूँगी। इरादा अच्छा है, सूसन। पकड़े रहना। बीच में ही न छोड़ना। कोई दोस्त तो बना रखा है एक-आध? सूसन मुस्कराती है। उस पर ज्यादा पैसा तो खर्च नहीं करती? सूसन हँसकर--- जी नहीं अम्मीजी! मेरी बात सुनो। न पूरा खर्च तुम किया करो और न ही उसे ही करने दिया करो। आधा-आधा, समझी! नहीं तो यूँ ही हजम कर ली जाओगी। मतलब समझ में आया? जी, अम्मीजी! सूसन शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना। अपनी ताकत बनाने की कोशिश करना।"[11] शादी के बाद स्त्री को किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना है और अपनी ताकत निश्चित रूप से आर्थिक ताकत और निर्णय लेने की क्षमता अर्जित करने की कोशिश करनी है। लेकिन बाजार व्यक्ति को अकेले करके उसे अपने पक्ष में लाना चाहता है।

अकेली स्त्री को वरीयता देने वाली व्यवस्था पसंद करने वाली स्त्री-विमर्शकार घर शब्द से ही आपत्ति करने लगती हैं। घर को लोकतान्त्रिक बनाने के लिए कृष्णा सोबती के उपरोक्त शब्दों को पढ़ने के बाद ही घर संबंधी उनकी धारणा को पूरा समझा जा सकता है। गैर-बराबरी और शोषण पर आधारित घर की पैरवी कोई भी लेखक और तार्किक व्यक्ति नहीं कर सकता है। स्त्री का समय कृष्णा जी के अनुसार तब बदलेगा जब वह धनार्जन करेगी। परिवार के भीतर पुरुष के अनुसार जीते रहने को वे अस्वीकार्य मानती हैं। वह घर में रहकर बेगार करते हुए अपने जीवन को खत्म करे इस व्यवस्था को कृष्णा सोबती नकारती हैं- "उसका वक्त तब सुधरेगा जब वह अपनी जीविका आप कमाने लगेगी। सोचने की बात है—मर्द काम करता है, तो उसे एवज में अर्थ-धन प्राप्त होता है। औरत दिन-रात जो खटती है वह बेगार के खाते में ही न! भूली रहती है अपने को मोह-ममता में। अनजान। बेध्यान। वह अपनी खोज-खबर न लेगी तो कौन उसे पूछनेवाला है।"[12] स्त्री को परिवार और घर की महिमा बार-बार बताते हुए कहीं भी कृष्णा सोबती उसे शोषण सहने की 'सीख' नहीं देतीं। वे उसे अपनी खोज-खबर लेने की आधुनिक सीख देती हैं।

'सूरजमुखी अंधेरे के' लंबी कहानी में रत्ती की स्थिति बचपन की एक भयानक घटना और उसके बाद साथ में खेलने वाले बच्चों और अन्य लोगों की क्रूर टिप्पणियों के कारण बिलकुल असामान्य हो चुकी है। फिर भी उस कहानी के अंत में एक कविता लिखी है जिसमें कृष्णा सोबती घरौंदे यानी घर की बात करती हैं- "सिर्फ आकाश---/ आकाश में घरौंदे नहीं बनते/ आकाश में धरती के फूल नहीं खिलते---/ नहीं उगते तो बस नहीं उगते--/ उगते ही नहीं!/ नहीं!" ये काव्य-पंक्तियाँ धरती के फूलों के खिलने के लिए घरौंदों के निर्माण के लिए आकाश नहीं धरती के अस्तित्व और उपयोगिता को रेखांकित करती हैं।

संदर्भ -:

---

[1] "देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। .... बहुत हुआ हफ्ते-पखवारे.... और मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली-सी तड़पती हूँ।" पृष्ठ 20, मित्रो मरजानी, 14 वाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन

[2] पृष्ठ 97-98, मित्रो मरजानी, 14 वाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन

[3] पृष्ठ 98-99

[4] "तेरी पंक्ति में कोई नहीं! न किसी की माँ, न दादी, न नानी। लड़की, तुम हो वनस्पति-कुश-घास-तिनका। जो कह रही हूँ वह समझती तो हो! लड़की चीखकर—बस अम्मी! कुछ अनुचित नहीं कहा। ठीक ही कह रही हूँ।" ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 27 "इतना तो बताओ मुझे, तुम खड़ी कहाँ हो! किस मोड़ पर हो! पंक्ति में है कोई! भाई-बहनों के दरवाजों के बाहर हो तुम! अम्मू फिर वही...लड़की, बीच में न टोको! बात को साफ होने दो। सुनो, बेटा-बेटियाँ, नाती-नातिन, पुत्र-पौत्र—मेरा सब परिवार सजा हुआ है, फिर भी अकेली हूँ। और तुम! तुम उसी प्राचीन गाथा के बाहर हो, जहाँ पति होता है, बच्चे होता हैं, परिवार होता है।" ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 65,

[5] ---"देखो रीमा, मैं अब पचास का हो चला हूं। मेरे लिये अब औरत के जिस्म का कोई मतलब नहीं रह गया।.... अब तुम मुझसे कोई उम्मीद न रखना।"

कबीर के ये शब्द रीमा के दिल की धड़कन को गड़बड़ा देने के लिये काफ़ी थे। कुछ पल की चुप्पी के बाद उसने मुंह खोला, "कबीर आप पचास के हो गये तो इसमें मेरा क्या कुसूर है? मैं तो अभी सैंतीस की ही

हूं।.... आप कहना चाहते हैं कि हमारी शादीशुदा ज़िन्दगी बस आपके एक वाक्य से ख़त्म हो गई?.... जिस तरह पेट को भूख लगती है, कबीर, जिस्म को भी वैसे ही भूख महसूस होती है। वैसे पेट की भूख शांत करने के तो कई तरीके हैं। मगर जिस्म........ "। रीमा को अपनी बात बीच में ही बन्द करनी पड़ गई। कबीर के बेसुरे ख़र्राटे कमरे में गूंजने लगे।"

[6] कुछ कहानियाँ कुछ विचार, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1998, पृष्ठ 78

[7] मित्रो मरजानी, 14 वाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन पृष्ठ 38

[8] ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 30

[9] ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 19

[10] ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 76-77

[11] ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 61

[12] ऐ लड़की, पहली आवृत्ति 2001, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 63-64